हिंदी - मलयालम साहित्य एवं सिनेमा में क्वीर विमर्श

सम्पादक

डॉ.निम्मी ए.ए

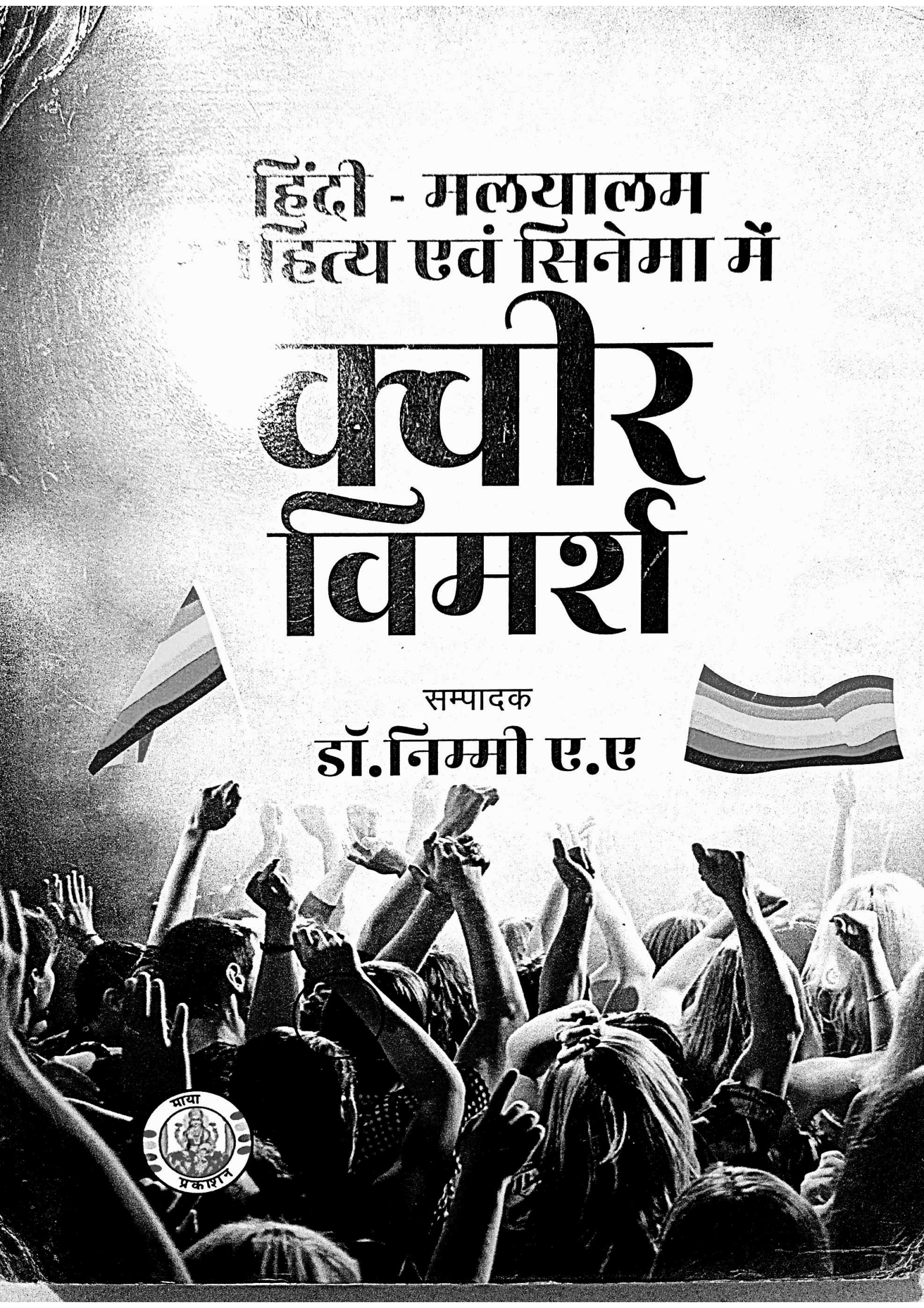

माया प्रकाशन

हिंदी - मलयालम साहित्य एवं सिनेमा में

क्वीर विमर्श

सम्पादक

डॉ.निम्मी ए.ए

माया प्रकाशन

कानपुर (भारत)

ISBN : 978-81-951311-8-1

पुस्तक : हिंदी-मलयालम साहित्य एवं सिनेमा में क्वीर विमर्श

संपादक : डॉ. निम्मी ए.ए.

© : संपादक

प्रकाशक : माया प्रकाशन

6A/540, आवास विकास हंसपुरम्, कानपुर-208021

मो. 9451877266, 7618879266, 6393609403

Email : mayaprakashankanpur@gmail.com

संस्करण : प्रथम : 2021

शब्द-सज्जा : रुद्र ग्राफिक्स, नौबस्ता, कानपुर

मूल्य : 750.00

मुद्रण : सार्थक प्रेस, नौबस्ता, कानपुर

जिल्दसाज : तबारक अली, पटकापुर, कानपुर

Hindi-Malayalam Sahitya Evam Cinema Mein Queer Vimarsh

Edited by : Dr. Nimmy A.A.

Price : Sevent Hundred Fifty Only.

अनुक्रम

	पूर्व कथन	viii
1.	किन्नरों के बदलते तेवर और 'मैं क्यों नहीं'	
	डॉ. दिलीप गेहरा	**21**
2.	ट्रांसजेंडर की मुक्ति का घोषणापत्र : पोस्ट बाक्स नं0 203 नाला सोपारा	
	डॉ. तसनीम सुहेल	**31**
3.	मानवीय गरिमा के हक की वकालत : 'गुलाम मंडी'	
	डॉ. नवीन नन्दवाना	**39**
4.	हिंदी कहानियों में अभिव्यक्त किन्नर जीवन की समस्याएँ	
	डॉ. आर. शशिधरन	**53**
5.	'किन्नर–केन्द्रित' सिनेमा में विमर्श का प्रादर्श	
	डॉ. विनय कुमार पाठक	**64**
6.	ट्रान्स जेन्डर और बढ़ता क्राइम : कितना सच कितना झूठ	
	डॉ. लता चौहान	**83**
7.	भारतीय सिनेमा में थर्ड जेंडर चेतना	
	डॉ. विजेंद्र प्रताप सिंह	**87**
8.	हिंदी साहित्य और सिनेमा में ट्रान्सजेंडर का स्वरूप	
	डॉ. शेख शहेनाज अहेमद	**101**
9.	भारतीय हिंदी फिल्मों में किन्नर विमर्श : 'तमन्ना'	
	डॉ. रजिया शहेनाज शेख अब्दुल्ला	**109**
10.	अस्तित्व की तलाश में बढ़ते कदम : मैं क्यों नहीं	
	डॉ. कविश्री जायसवाल	**122**
11.	महेंद्र भीष्म के 'पायल' की झंकृति पर झूमता लोक	
	डॉ. गंगाप्रसाद शर्मा 'गुणशेखर'	**128**
12.	अस्मिता की तलाश के परिप्रेक्ष्य में : 'पुरुष तन में फँसा मेरा नारी मन'	
	डॉ. के. जयलक्ष्मी	**144**
13.	तीसरी ताली में अभिव्यक्त आत्मगौरव हिजडा	
	डॉ. पी. प्रिया	**151**
14.	इंसानियत की खोज में ट्रांस जेंडर	
	डॉ. राघामणि.सी	**159**

8

हिंदी साहित्य और सिनेमा में ट्रान्सजेंडर का स्वरूप

डॉ. शेख शहेनाज अहेमद

साहित्य और समाज का आपसी संबंध है। साहित्य समाज का दर्पण कहलाता है। साहित्य का बीज समाज में ही जन्म लेता है। अतः समाज में जो कुछ घटित होता है, साहित्य में उसकी अभिव्यक्ति होती है। कॉडवेल का कथन के अनुसार, "साहित्य का मोती समाज की सीपी में ही जन्म लेता है। समाज में जो कुछ व्याप्तत है,उसे साहित्यकार अपनी लेखनी से संवेदन बद्ध कर चिंतन का विषय बनाता है।

वैसे देखा जाए तो आज परिवर्तन में साहित्यिक दृष्टिकोन से अनेक विमर्शो की चर्चा की जा रही है। जैसे नारी विमर्श, दलित विमर्श, अल्पसंख्यक विमर्श, आदिवासी विमर्श, किन्नर विमर्श, किसान विमर्श आदि। जिसके अंतर्गत समाज के अनेक उपेक्षित वर्गोपर साहित्य में चर्चा हो रही है। सभी साहित्यकार अपने–अपने विचारोंनुसार इन विमर्शोपर चिंतन कर रहे है। ऐसी बात नही कि साहित्य में किन्नर पर पहली बार लिखा जा रहा है। महाभारत महाकाव्य में शिखंडी नाम का पात्र जो कि किन्नर था। अर्जुन ने भी अज्ञातवास में बृहन्नला किन्नर बनकर एक साल इसी रूप में व्यतीत किया था। रामायण में भी किन्नरों का उल्लेख मिलता है। कौटिल्य ने भी अपने अर्थशास्त्र के ग्रंथ में किन्नरों का उल्लेख है। यह भी सत्य है कि, ऐतिहासिक तथ्यों के अनुसार हिंदू और मुस्लिम शासक दरबार में खासतौरर पर रानियों की सुरक्षा के लिए पहरेदार के रूप में किन्नर नियुक्त किये जाते थे।

संसार में समाज ने दो वर्गो को मान्यता मिली है। स्त्री और पुरूष यही मान्यताएँ चली आ रही है। स्त्री और पुरुष को सृष्टि का आधार माना गया है। इनके अलावा भी एक और वर्ग उपस्थित है। वह है लैगिंक विकलांगता। जिसे उभयलिंगी, तृतीयलिंगी, हिजड़ा, खुसरा, किन्नर, मौसी आदि नामों से संबोधित किया जाता है। इस वर्ग को हमेशा से ही समाज द्वारा उपेक्षित किया गया, घृणित दृष्टि से देखा जाता है। वास्तव में यह समुदाय आज भी निरंतर अपने अस्तित्व के लिए लढाई लढ़ रहा है, संघर्ष कर रहा है।

किन्नर हिंदी के दो शब्दो कि 'कि' और 'नर' को मिलाकर बना है, इसका तात्पर्य हिमाचल की किन्नर जनजाति से नही है। उस वर्ग से है, जो पूर्ण रूपेण न स्त्री है और न पुरूष। वस्तुतः जिसे जनसामान्य की भाषा में शिडजाश कहा जाता है। यह शब्द सुनते ही हमारी आँखों के सामने एक खास तरह की भाव-भंगिमा, आचार-व्यवहार, रहन-सहन, चाल-ढाल वाले इंसानो की छवि सामने आ जाती है। किन्नर यह शब्द हिजडों का परिमार्जित रूप है। इन्हे किन्नर कहने से इनका दर्द कम नही होता। नीरजा माधव, महेंद्र भीष्म, प्रदीप सौरभ, चित्रा मुद्गल, अनुसया त्यागी, निर्मला भुराडिय आदि का साहित्य इस उपेक्षित और हाशियेकृत समाज की जीवन शैली, उनकी समस्याओ,पीडा,आकोश और संघर्ष की अकथ कथा को पाठकों के सामने प्रस्तुत करता है।

वैसे देखा जाए तो किन्नर समाज भी चार वर्गो में विभक्त है। बुचरा, नीलिमा, मनसा और और हंसा। बुचरा वर्ग के ही हिजड़े यह वास्तविक है। ये न जन्मजात स्त्री है न पुरुष।

किन्नर– किसी कारण वश हिजड़ा बननेवाले निलिमा वर्ग में आते है। मानसिक तौर पर हिजड़ो के निकट स्वंय को समझते है वह मनसा वर्ग में आते है। किसी यौन कमजोरी या अक्षमता के कारण स्वंय की नियति को हिजड़ो के साथ जोड लेते है, उन्हे हंसा कहा जाता है यानी वह हंसा वर्ग में आते है। इनमे से 'मनसा' वर्गवालों को सामान्य मनोवैज्ञानिक काऊन्सलिंग द्वारा इन्हें वास्तविक लिंग में भेजा जाता सकता है। हंसा वर्ग वालों को भी इलाज करके इनमे से अधिकांश को सामान्य अथवा स्त्री बनाया जा सकता है और ये भी अपना सामान्य जीवन जी सकते है। जो नकली हिजड़े होते हैं, उन्हे अबूला कहा जाता है। जो वास्तव में पुरूष होते है, किंतु धन के लोभ में हिजड़ो का स्वांग करते है। जीवन जीने के लिए जितनी चीजे जरूरी है वे हर इंसान के प्राथमिक अधिकारों का हिस्सा है किंतू समाज का यह हिस्सा आज भी अपने अधिकारों से वंचित है। मानव विभेद का प्रतीक यह समुदाय इंसानी अधिकारों से मरहम है। आमतौर पर यह वर्ग सामान्य जन के हर शुभ कार्य की रस्मों से जुड़ा हुआ है। परंतु इनका अपना जीवन शुभकार्यो से और शुभ कामनाओं से दर है? ऐसा क्यों? हम यह सोंचने पर विवश हो जाते है कि, समाज का यह वर्ग अपने लिए एक बेहतर जिंदगी, अपने अधिकार,शिक्षा,रोजगार आदि जैसी चिंताओं से कब मुक्त होगा। इन्हें अपना उचित अधिकार कब प्राप्त होगा।

साहित्य का अध्ययन करने के पश्चात हमे यह दिखाई देता है कि, समय-समय पर कहानियों, नाटकों एवं उपन्यासो में थर्ड जेंडर पात्र आते रहे है। साहित्य के अतीत में विचार किया जाए तोहम पाते है कि, पाण्डेय बेचन

शर्मा 'उग्र' की कुछ कहानियों में भिन्न पात्रों का जिक्र आता है वे यही किन्नर है, जिन्हे 'उग्रजी' ने लौंडेबाज नाम से प्रस्तुत किया है। लेकिन उनका उल्लेख मुख्यपात्र के रूप में नही हुआ। किन्तु समकालीन कथाकारोंने थर्ड जेंडर की ओर बड़ी गंभीरता से ध्यान दिया। साहित्य में वर्तमान में थर्ड जेंडर को विषय बनाकर बहुत कुछ लिखा जा रहा हैं, जिसमें उनकी जैविक संरचना से लेकर सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक संरचनाओं के भिन्न-भिन्न पहलुओं को सामने लाने का प्रयासस किया है। सन २००२ में नीरजा माधव द्वारा प्रकाशित श्यमदीपश उपन्यास हिंदी साहित्य जगत में थर्ड जेंडर पर रचित पहला स्वतंत्र उपन्यास है। यह उपन्यास लेखिका को दलित और स्त्री लेखन से दूर रखता है। तो दूसरी ओर नारी अस्मिता और शोषित उपेक्षित वर्ग के उन अन छुए पहलूओं को भी सामने रखता है। जिनकी ओर आजतक किसी की लेखनी न नही छुआ।

प्रदीप सौरभ द्वारा लिखित उपन्यास शतिसरी तालीश जो सन २०११ में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में किन्नरो के अकेलेपन और समाज में इस समुदाय के प्रति मौजुद अलगाव की कहानी है। यह हिंदी का एक साहसी उपन्यास है। उपन्यास का शीर्षक ही 'तीसरी ताली' है जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उसी वर्ग की ताली है, जिन्हे निजी जिंदगी में कभी तालियाँ नही मिली। पूरी उम्र तन्हाई में काटने के बावजूद किन्नर समाज में सामान्य जन-जीवन की अधूरी ख्वाहिशों को पूरा करने का प्रयास करते रहते है।

सन २०१४ में प्रकाशित निर्मला भुराडिया का उपन्यास 'गुलाममंडी' है। जिसमें संवेदना के गहन स्वर पर गुलामी के दंश को बड़ी कुशलता से अभिव्यक्त किया है। इस उपन्यास में समाज के दो तिरस्कृत वर्ग किन्नर और जिस्म फरोशी करनेवाले वर्ग की कथा को बड़ी कुशलता से समाज के समझ प्रस्तुत किया है। उसी के साथ-साथ मानव तस्करी निर्मोही और भयावह दुनिया की कथा ही नही बल्कि उस सच को उकेरा गया जिसे देख हमारे रोंगटे खड़े हो जाते है। इस विमर्श के बहाने हिजड़ा समुदाय के आस-पास की जो भी समस्याएँ है,उन्हे भी समेटने का प्रयास किया गया है। उपन्यास में हिजड़ो की एकसे अधिक समस्याओं को पाठको के सामने रखा गया बस,रेल,समाज में भीख माँगना। महानगर में हिजड़ो के गुटों मे संघर्ष तथा देह-व्यापार से जुड़े गुंडो द्वारा हिजड़ो को भी उस व्यापार में जबरदस्ती धमकाकर धकेलना आदि समस्याओं को लेखिका ने प्रस्तुत किया है। साथ ही उनकी सांस्कृतिक परम्पराएँ उनकी आराधना पद्धति, रहन-सहन और उनके अतीत की जानकारी भी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत की है।

सन २०१६ में प्रकाशित चित्रा मुदगल का उपन्यास 'पोस्ट बॉक्स नं.२०३ नाला सोपारा' यह पत्रात्मक शैली में लिखा गया है। लेखिका ने इस उपन्यास द्वारा किन्नर समुदाय की वेदना, परिवार-समाज में उनके प्रति उपेक्षा, राजनिति में उनके उपयोग किए जाने की अंतर्कथा है। उपन्यास में किन्नरों को मनुष्य न समझे जाने की मानसीकता के प्रतिरोध को अभिव्यक्त करता है। साथ ही संवेदना के गहरे स्तर पर उतरकर माँ-संतानपिता के रिश्तों के माध्यम से उनके आत्मीय उपमा की तलाश करता है।

महेंद्र भिष्म दवारा लिखित गुरु पायलसिंह के जीवन संघर्ष की गाथा बयान करता 'मै पायल' यह आत्मकथात्मक उपन्यास है। इसमें गुरु पायलसिंह की अतीत की गाथा है। प्रत्येक किन्नर का अपना जीवन होता है, उसका स्वंय का झेला संघर्ष होता है। "मैं पायल" में प्रत्येक किन्नर के अतीत के संघर्ष की झलक परिलक्षित होती है। विस्थापन का दंश कष्टकरी होता है, फिर चाहे परिवार,समाज या अपनी मिट्टी से मिला हो। प्रत्येक किन्नर को सर्वप्रथम यह दंश अपने परिवार से भुगतना पड़ता है।

किन्नर समाज की बात आती है तो हमे यह जानना जरूरी है कि वे विकलांगता के शिकार है। हमे उनके प्रति उदार और सहिष्णु होना चाहिए। उनकी अस्मिता और उनके अस्तित्व को स्वीकार करना होगा। इस संदर्भ में मानवीय सर्वोच्च न्यायालय ने एक सकारात्मक और सार्थक पहल की है। जहाँ उन्होंने विगत १५अप्रैल २०१४ में आलोच्य समाज को भारतीय संविधान के अनुच्छेद १६ (१) के अनुसार निजता और वैयक्तिक स्वतंत्रता से संबंधित सभी अधिकार दिये एवं केंद्र तथा राज्य सरकारो को शीघ्रता से इस संबंध में कार्यवाही के आदेश दिया। इसके साथ ही उन्होंने इन्हें अन्य पिछड़ा वर्ग के तहत विविध नौकरियाँ एवं शिक्षण संस्थानों में आरक्षण पाने का अधिकारी भी माना है।

सन १६६४ में लैंगिक विकलांगो को मतदान की मंजुरी दी गई थी इससे किन्नरों के लिए राजनीति के रास्ते खुल गए। मतदाता में किन्नरों के लिए राजनीति क्षेत्र में सफलता पानेवाली पहली किन्नर हिसार हरियाणा की शोभा नेहरु है, जो कि १६६५में हुए नगर निगम के चुनाव में पार्षद चूनी गयी थी। श्रीगंगानगर राजस्थान में भी किन्नर बसन्ती पार्षद बनी। मध्यप्रदेश में सन २००२ में किन्नर विधायक पार्षद व महापौर थे। देश की पहली किन्नर विधायक 'शबनम मौसी' शाहडोल जिले से सुहागपुर विधानसभा सीट से चूनी गई थी। छत्तीसगढ़ के रायगढ़ में २०१५ में निर्दलीय उम्मीदवार किन्नर मधुने मेयर का चुनाव जीता।

भगवंत अनमोल का 'जिंदगी ५०-५०' उपन्यास किन्नर जीवन के अनन्य पहलू खोले व दुशारियों से दो-चार कराते उन्हें मनुष्यत्व देते है। मछेद्र मोरे

के नाटक जानेमन इश्क के अनुसार किन्नर प्राकृतिक रचना नही। यह वंशवृद्धि के लिए किन्नर गुरु द्वारा मर्द को किन्नर बनाने का परिणाम है। १६२० के आरा-पारा उग्रजी का कहानी संग्रह चॉकलेट और महाप्राण निराला के 'चतुर चमार', 'बिंदा महाराज' शिवप्रसाद सिंह की कहानी जिसमें अछेड हो रहे किन्नर की बहुआयामी विडम्बनाए है। एक प्राकृतिक शाप के कारण बिंदा महाराज क्रूर समाज में उपेक्षित ओर शापित जीवन जीने के लिए विवश है। कादंबरी मेहरा की 'हिजडा' में नायिका की कॉलेज के दिनों की मर्दनुमा सहपाठीन रागीनी जिजीविषा के कारण हिजडों के समुदाय में शामिल हो जाती है। किरण सिंह की कहानी 'संझा' उस समाज का मनोविज्ञान लिए है, जो बच्चे के किन्नर रूप को स्वीकारने की क्षमता ही नही रखता। बलजीत सैनी की 'अभी और कितने नरक' का नायक भी जिंदगी के इस मजाक को ग्रहण को भोग रहा है। वेब दुनिया पोर्टल में भी हुई कहानियाँ पढ़ने को मिल रही है। जैसे संजय दुबे 'पन्ना बा' आदि। काव्य जगत में भी थर्ड जेंडर के दर्द से अछुता नही रहा। निशा 'माथुर की' छोटी सी खोली में, तन्हा जीवन की तन्हाइयाँ, नीरजा मेहता की 'मैं हुँ किन्नर' में किन्नर विलाप और इंसानियत की गुहार मन छुलेती है।

स्त्री पुरुषोत्तर व्यक्तित्व के कारण थर्ड जेंडर न कभी समाज की मुख्यधारा का अंग बन सके है और न साहित्य का। लेकिन संघर्ष जारी है। संवैधानिक लड़ाई में कुछ जीत लिया है कुछ पाना बाकी है, लेकिन सामाजिक सांच से लड़ाई जारी है।

हिंदी सिनेमा में ट्रान्सजेंडर की बात की जाए तो सिनेमा में भी यह समाज पूरी तरह हाशिए परर ही रहा है। आज हिंदी सिनेमा के १०० वर्ष से अधिक हो चूके है लेकिन ट्रान्सजेंडर का जीवन, उनकी समस्याओं, उनकी सामाजिक स्थिति, समाज क उनके प्रति नजरिया, उनके प्रति किए जा रहे अमानवीय व्यवहारों को कभी भी मुकम्मल तरीरके से व्यक्त करने की कोशिश नही की गई है। यह समूह समानांतर तथा व्यावसायिक सिनेमा, दोनो रूपों से गायब रहा। हिन्दी फिल्मों में इनकी भूमिका जन्मोत्सव, विवाहोत्सव में बधाई देने नाचने गाने तथा भीख माँगने तक ही सीमित रही। सन १६७४ में आई फिल्म 'कुँवारा बाप- का मशहूर गाना श्सज रही गली मेरी माँ सुनहरी गोटेमंश भी बधाई देनेवाले ट्रांसजेंडर

समूह को प्रदर्शित किया गया है। बाद में यह गाना इस समूह का प्रतीक बन गया और 'राजा हिंदुस्तानी' (१६६६),२०१५ में ट्रान्सजेंडर लोगों को चिढ़ाने के लिए प्रयोग किया गया। फिल्मों में भी वही दिखाया जो सामान्य रूप से समाज में दिखाई देता है। समाज की कठोर संरचना को चुनौती देनेवाली इन लोगों

की वेदना को प्रदर्शित करने की कभी आवश्यकता ही महसूस नही की गई।

ट्रान्सजेंडर पात्र को केंद्र में रखकर जो फिल्में बनी है, वह उँगली पर गिनने मात्र की है। जिसमें दरमियाँ (१९९७), दायरा (१९९७), तमन्ना(१९९७), २००५ में 'शबनम मौसी' तथा २०१४ में 'बीयांड द थर्डजेंडर२१९९१ में सड़क, २००८ में वेलकम टू सज्जनपूर, २०११ में मर्डर २ आदि। इन फिल्मों में मुख्य सहाय्यक पात्र के रूप में सड़क, वेलकम टू सज्जनपूर, मर्डर २ को शामिल किया गया है। इस प्रकार के नकारात्मक छविवाले फिल्मों का विरोध पूरे देशभर में अलग–अलग ट्रान्सजेंडर से संगठनों द्वारा किया गया। उनका कहना था पहले ही समाज में ट्रांन्सजेंडर के बारे में सच्चाई कम और अफवाह ज्यादा फैली हुई है, इस तरह के फिल्मों द्वारा उन अफवाहों को और मजबूती मिलेगी। 'सड़क२ में ट्रान्सजेंडरकी भूमिका में महारानी एक वेश्या दलाल है तो मर्डर २ मे सीरियल किलर के रूप में दिखाया गया, जो जवान लड़कियों की हत्या करता है।

सन १९९४ तक ट्रान्सजेंडर पर जो फिल्में बनी उसमें भीख मांगना, बधाई देना आदि रूप ही दिखते है। लेकिन उसके बाद ट्रान्सजेंडर फिल्मों की छवि बदल रही है। उसमें अब उननकी समस्याओं को रेखांकित करने के साथ ही उन्हें भी मनुष्य समझे जाने का आग्रह किया जाने लगा ९० के दौरान एड्स आंदोलन के कारण हिजड़ो के स्वास्थ्य के लिए भी काम किया गया। सन १९९३ में वैश्विक स्तर पर वियना में अंतरराष्ट्रीय स्तरपर मानवाधिकार विमर्श के रूप में जेंडर और यौनिकता के प्रश्न पर चर्चा की गयी। इस विमर्श के कारण १९९६ में पहली बार महिला के रूप में मतदान करने का अधिकार मिला। इसी दौरान श्दरमियाँश, तमन्ना, जैसे फिल्में बनी जिसमें ट्रान्सजेंडर को प्रमुखता प्रदान की। तमन्ना फिल्म समाज के सामने दो मुल्यों या स्थितियों को रखती हैं, एक तरफ पितृसत्ताक मूल्यों के प्रतीक रणवीर चोपड़ा है जो अपने ही बच्ची को बेटी होने के कारण कचरे के डिब्बे में फिकवा देता है। वही दूसरी और पितृसत्ताक खाचे में फिट न होकर समाज से बहिष्कृत ट्रान्सजेंडर चीकू (परेश रावल) है जो उस बच्ची को कचरे के डिब्बे से उठाकर लन–पोषण करता है। जिन पूरूषोचित मूल्यों को सर्वश्रेष्ठ माना जाता है वही पूरूष कितनना अमानवीय कर रहा है। यह हमें रणवीर चोपड़ा को देखकर पता चलता है। तथाकथित मुख्यधारा के समाजपर कटाक्ष करनेवाले इसी तरह के दृश्यों का प्रयोग उस दौर की फिल्मों में देखने को मिलता है। सन १९९५ मे बॉम्बे फिल्म का दृश्य जब पूरा शहर दंगो की आग में सूलग रहा है, खून बहानेवाले हाथ बुढे, बच्चे, महिलायें फर्क नही कर रहे हो ऐसे में एक ट्रान्सजेंडर बच्चे की जान बचाकर खुद को इन्सान समझने वाले लोगों पर

सवाल खड़े करता है। सन् २००० में 'मेला' में डाकुओं से लड़ने के लिए हिजड़ो का सामने आना, २००७ में 'ट्रॉफिक सिग्नल' में दो रूपए के झंडे का भाव करते नेता को हिजड़ो का धिक्कारना,२०१० में आयी 'थैंक्स माँ' सड़क पर बच्चा छोडनेवाले माँ–बाप को गाली देना, बच्चे पैदा न कर सकने के कारण ही समाज उसे हिजड़ा कहता है, लेकिन वे स्वंय खुद क्या है जो अपने बच्चों को सडक पर फेंक देते है। फिल्म 'दरमियाँ' अपनी पटकथा और ट्रान्सजेंडर समूह को प्रमुखता से दिखाई जाने कके कारण अन्य फिल्मों की तुलना में बेजोड लगती है। जो समाज इंसान की पहचान इंसान के रूप में न करके लिंग के आधारपर करता है, वहाँ इम्मी जैसा बच्चा अपने दोस्तो द्वारा चिढ़ाए जाने पर अपने लिंग को ढूंढने के लिए परेशान होता है। उसके स्त्रैणव्यवहार पर उसकी नानी टोकती है। इम्मी की माँ (किरण खैर) जो एक अभिनेत्री भी है, समाज में बदनामी के डर से उसे (इम्मी) अपना भाई कहती है। इसके बावजूद भी इम्मी को समाज में जगह नही मिल पाती और इम्मी हिजड़ा समाज में जाना नही चाहता वह यथास्थितिवाद का विद्रोह करता है, पर उसे स्त्री–पुरूष समाज में भी अपमान और उपेक्षा का सामना करता पड़ता है। इन्हीं सब से परेशान होकर इम्मी कहता है "आपा (जो उसकी माँ है) ने मुझे पैदा होते ही हिजड़ो को दे देना चाहिए था पर अब मेरी जगह इस दुनियाँ में है और न ही हिजड़ो की दुनियाँ में, दोनों के दरमियाँ हुँ मैं।

सन १९९१ में मध्यप्रदेश में विधानसभा चुनाव में शबनम मौसी का निर्दलीय चुनाव लड़ना और भारी मतों से जीतना भी उल्लेखनीय है। इसके बाद मध्यप्रदेश में स्थानीय चुनाओं में कई ट्रान्सजेंडर प्रत्याशीयों को लोगो द्वारा अपने प्रतिनिधी के रूप में स्वीकार्यता मिली और इस बदलाव को फिल्मी पटकथा फिल्म 'शबनम मौसी' शबनम मौसी की जीवन कथा है। एक पुलिस के घर बच्चा जन्म लेता है। बधाई देने के लिए आया हिजड़ो का समूह उस बच्चे का लिंग देखकर उसका अपने समूह पालन–पोषण करने के लिए उस परिवार से बच्चा माँग लिया जाता है। उसका नाम शबनम रखा जाता है। उसे भी अन्यय ट्रान्सजेंडरों की तरह बार–बार हिजड़ा होने का एहसास दिलाया जाता है, इस पर शबनम कहती है, "ठीक हे हम औलाद पैदा नही करत सकते, लेकिन हम अनाज पैदा कर सकते है। पढ़–लिखकर डॉक्टर, इंजिनियर, अध्यापक, कलागुरू तो बन सकते है।" शबनम जैसे लोगों का यह सवाल सामाजिक तथा संवैधानिक उपेक्षाओं से उपजा है। सन २००८ में बनी 'वेलकम टु सज्जनपूर' की मुन्नीबाई जो ग्राम प्रधान का चुनाव लड़ते हुए उपहास का शिकार होती है, इसपर वह कहती है। "मैं ऐसी वैसी नही जानती, मै तो डेमोक्रेसी जानती हैं।"

इस तरह फिल्मों में मर्द,नामर्द, हिजड़ा जैसे शब्दो पर चोट करने के बजाय इन शब्दों द्वारा लोगों के अंदर के पुरुषत्व को जगाने, उसके अंदर के डर को बाहहर निकालने के लिए किया जाता रहा है। जंब इन शब्दों का प्रयोग नकारात्मक ढंग से किया जाता है तो अन्य लोगों के लिए यह संकेत होता है कि हमें उस तरह का श्असामाजिक व्यवहारश नही करना है। दूसरी तरफ जिन फिल्मों में ट्रान्सजेंडर के मुद्दो को दिखाने का प्रयास भी किया गया है। उन फिल्मों का संवाद भी सतही और समंती मूल्यों से भरा हआ मिलता है।

सुप्रीम कोर्ट द्वारा सन २०१४ में पारंपारिक रूप से पहचाने जानेवाले हिजड़ा समूह को भले ही थर्ड जेंडर के रूप में पहचान मिल गई है लेकिन अभी भी यह समुदाय पाविारिक तथा सामाजिक स्वीकार्यकता प्राप्त नही कर सका है। उनके सामने स्वीकार्यता, शिक्षा, रोजगार तथा स्वास्थ जैसे मुद्दे है जो हासिल करना बाकी है। २०१४ में बनी 'बीयांड द थर्ड जेंडर' फिल्म इसी के आस–पास रची गई कहानी है। नताशा नामक ट्रान्सजेंडर अपने अकेलेपन को दूर करने के लिए तथा प्यार और स्वीकार्यता की तलाश में खुद को अकेली पाती है। धीरे–धीरे वह इस अकेलेपन को दूर करने तथा आजीविका के लिए सेक्स वर्कर के रूप में काम करती है। इस दौरान वह कई बार पुलिस द्वारा प्रताडित भी होती है। संवैधानिक रूप से तो ट्रान्सजेंडर को पहचान मिल गई है पर अभी भी पारिवारिक तथा सामाजिक स्वीकार्यता की लड़ाई यह समुदाय लड़ ही रहा है।

संदर्भ

१. नीरजा माधव – यमदीप – सामयिक – दिल्ली
२. दिव्या माथुर एक शाम भर बाते
३. महेंद्र भिष्म – किन्नर कथा
४. प्रदीप सौरभ तीसरी ताली
५. मैं पायल – अमन प्रकाशन
६. चित्रा मुदगल – पोस्ट बॉक्स नं.२०३ नाला सोपारा
७. निर्मला भुराडिया – गुलाम मंडी
८. भगवंत अनमोल – जिंदगी ५०–५०
९. मछिंदर मोरे – जानेमन – इधर
१०. सुरेश मेहता – किन्नर गाथा

हिन्दी विभाग ह.ज.पा.म.हिमायतनगर,
नांदेड (महाराष्ट्र)

○